संविदा अधिनियम की धारा 10 के अनुसार सभी करार (Agreement) संविदा है। जो सक्षम पक्षकारों द्वारा स्वतन्त्र सहमति से वैध प्रतिफल से एवं वैध उद्देश्य के लिये किये गये हैं। अतः धारा 10 की यह आवश्यक शर्त है कि संविदा के पक्षकार संविदा करने के लिये सक्षम होने चाहिये। 'सक्षम पक्षकार' संविदा के अनेकों तत्वों में से एक आवश्यक तत्व है। सक्षम पक्षकार कोन है, इसका उत्तर अधिनियम की धारा 11 में दिया गया है। संविदा अधिनियम की धारा 11 के अनुसार प्रत्येक ऐसा व्यक्ति संविदा करने के योग्य है जो विधि के अनुसार वयस्क है, स्वस्थ मस्तिष्क वाला है, तथा अन्य प्रचलित विधि द्वारा संविदा करने के अयोग्य

नहीं है । [1] उपरोक्त परिभाषा के द्वारा निम्नलिखित व्यक्ति संविदा करनेके योग्य हैं :—

1. जिस विधि के द्वारा व्यक्ति शासित हो उसके द्वारा वह वयस्क हो,
2. स्वस्थ मस्तिष्क वाला हो, तथा
3. देश में प्रचलित विधि द्वारा संविदा करने के अयोग्य घोषित नहीं किया गया हो ।

धारा 11 की नकारात्मक व्याख्या के अनुसार निम्नलिखित व्यक्ति संविदा करने के योग्य नहीं होते :—

1. अवयस्क
2. पागल अथवा विकृत मस्तिष्क वाला व्यक्ति
3. ऐसा व्यक्ति जो किसी अन्य विधि द्वारा संविदा करने के लिये अयोग्य घोषित किया गया हो ।

## अवयस्क

अवयस्क कौन है :

वयस्क कौन व्यक्ति है इसका उल्लेख संविदा अधिनियम में नहीं किया गया है । इसके लिये हमें अन्य विधि या अधिनियमों की सहायता लेनी होगी । भारत में भारतीय वयस्कता अधिनियम 1875 की धारा 3 के अनुसार भारत में निवास करने वाला प्रत्येक ऐसा व्यक्ति वयस्क माना जायेगा । जिसने 18 वर्ष की आयु पूरी कर ली है, इससे पूर्व नहीं । तथा जिस अवयस्क की संपति एवं व्यक्तित्व की देखभाल के लिये न्यायालय द्वारा संरक्षक नियुक्त किया गया है ऐसा अवयस्क 21 वर्ष की आयु पूरी करने पर वयस्क होगा, इसके पूर्व नहीं । अर्थात् साधारण रुप से 18 वर्ष की आयु पूरी करने से पूर्व व्यक्ति अवयस्क होगा और यदि किसी अवयस्क का व्यक्तित्व व संपति न्यायालय द्वारा नियुक्त संरक्षक की संरक्षणता में है तो वह 21 वर्ष की आयु पूरी करने से पहले अवयस्क माना जायेगा ।

इंग्लैण्ड में पहले 21 वर्ष की आयु पूरी करने वाला व्यक्ति वयस्कता को प्राप्त करता था परन्तु 1969 में ब्रिटिश संसद द्वारा परिवार विधि सुधार अधिनियम (Family Law Reform Ac 1969) 1969 के द्वारा वयस्कता की उम्र 18 वर्ष कर दी गई है । अर्थात् अब इंग्लैण्ड में प्रत्येक ऐसा व्यक्ति जिसने 18 वर्ष की आयु पूरी कर ली है वयस्क होता है ।

1. Every person is competent to contract who is of the age of majority according to the law to which he is subject, and who is of sound mind, and not disqualified from contracting by any law to which he is subject.

अवयस्क के संविदा की प्रकृति :

भारतीय संविदा अधिनियम की धारा 10 के अनुसार संविदा के पक्षकार संविदा करने के लिये सक्षम होने चाहिये। धारा 11 उल्लेख करती है कि अवयस्क संविदा करने के लिये सक्षम पक्षकार नहीं है। परन्तु ये दोनों धाराएं यह स्पष्ट नहीं करती हैं कि यदि एक अवयस्क करार करता है तो उस करार की क्या प्रकृति होगी। क्या वह करार अवयस्क के विकल्प पर शून्य करणीय होगा अथवा वह पूर्णतः शून्य होगा। इन उपबन्धों ने अवयस्क के संविदा के प्रकृति के विषय में बहुत भ्रम उत्पन्न किये। इसके अतिरिक्त भारतीय उच्च न्यायालयों के निर्णय भी इस विषय पर भिन्न भिन्न थे। परन्तु यह विवाद 1903 में प्रिवीकाउंसिल की ज्युडिशियल कमेटी के द्वारा मोहिरी बीबी बनाम धर्मदास घोष[2] के वाद में निर्णय देकर सदैव के लिये समाप्त कर दिया। इस वाद का निर्णय देते हुए न्यायालय ने धारित किया कि भारतीय संविदा की अधिनियम की धारा 11 के अनुसार संविदा के पक्षकार वयस्क होने चाहिये तथा यदि कोई व्यक्ति अवयस्क है तो वह संविदा करने के लिये सक्षम पक्षकार नहीं है। यदि अयोग्य पक्षकार संविदा करता है तो वह संविदा शून्य ही नहीं अपितु पूर्णतः शून्य होगा, न कि शून्य करणीय। इसके पश्चात् भारतीय न्यायालय अवयस्क के संविदा को पूर्णतः शून्य घोषित करते चले आ रहे हैं। चाहे वह निर्णय अवयस्क के लाभ के लिये हो अथवा उससे अवयस्क की हानि होती हो। इसी क्रम में मोरसरवर्जन बनाम फकरूद्दीन मोहम्मद चौधरी[3] के वाद में प्रिवी कांउसिल द्वारा दिय ागया निर्णय भी उल्लेखनीय है। इस वाद के अन्तर्गत अवयस्क के संरक्षक के द्वारा कुछ अचल संपति अवयस्क की ओर से खरीदी गयी थी। अवयस्क ने दूसरे पक्षकार के विरुद्ध विशिष्ट अनुपालना के लिये (Specife Performance) वाद प्रस्तुत किया। परन्तु अवयस्क का वाद खारिज कर दिया गया। न्यायालय ने कहा कि अवयस्क की संपति के प्रबंधक अथवा अवयस्क के संरक्षक की शक्ति के अन्तर्गत यह नहीं है कि वे अवयस्क की संपति के ऊपर या अवयस्क के ऊपर कोई संविदा का दायित्व डाल दें। क्योंकि अवयस्क और दूसरे पक्षकार के मध्य पारस्परिकता (Mutuality) का अभाव होता है अतः अवयस्क विशिष्ट अनुपालना की डिक्री प्राप्त नहीं कर सकता।

परन्तु वर्तमान काल में यह संभव नहीं हो सकता कि अवयस्क को संविदा करने से पूर्णतः वंचित कर दिया जाये। आज के सामाजिक एवं वाणिज्यिक जीवन में अवयस्क महत्वपूर्ण

दायित्वों का निर्वाह कर रहे हैं। अतः प्रिवी कांउसिल ने अपने पुराने निर्णयों में कुछ संशोधन किया जिसका प्रमाण श्री काकुलम सुब्रहमण्यम बनाम कुरासुब्बा राव[4] का वाद है। इस वाद के अन्तर्गत अपने पिता के कर्ज को चुकाने के उद्देश्य से एक अवयस्क और उसकी मां ने कुछ भूमि को बेचा और कर्ज को चुका कर संपत्ति को बंधक मुक्ति करायी। बंधक मुक्त कराने के पश्चात् अवयस्क ने बेची हुई भूमि को वापिस लेने के लिये वाद प्रस्तुत किया वाद के तथ्यों में यह स्पष्ट था कि संविदा अवयस्क के लाभ के लिये किया गया था। तथा संविदा अवयस्क के संरक्षण की शक्तियों के अन्तर्गत भी था। न्यायाधीश लार्ड मोर्टन ने कहा कि संविदा अधिनियम की धारा 11 एवं मोहरी बीबी के वाद में निर्णय के पश्चात् यह स्पष्ट है कि अवयस्क संविदा करने में सक्षम नहीं है। परन्तु यदि संविदा अवयस्क के लाभ के लिये किया गया है एवं संरक्षक ने अपनी शक्तियों के अन्तर्गत उक्त संविदा किया है तो वह संविदा अवयस्क पर बाध्यकारी होगी।

उपरोक्त निर्णय के आधार पर यह स्पष्ट है कि विधि की नीति यह है कि वह अवयस्क की रक्षा करेंगे क्योंकि अवयस्क संविदा की प्रकृति को समझने में सक्षम नहीं होता। अतः अवयस्क द्वारा किये गये संविदा पूर्णतः शून्य होंगे। परन्तु संविदा अवयस्क के हित के लिये किये गये हैं तो उन संविदाओं को अवयस्क प्रवर्तनीय करवा सकता है।

**अवयस्क के संविदा के प्रभाव :**

अवयस्क की संविदा के निम्नलिखित प्रभाव होंगे :—

**1. अवयस्क के विरुद्ध विबंधन का नियम लागू नहीं होगा :**

यदि अवयस्क ने अपनी आयु के विषय में मिथ्यावर्णन करके दूसरे पक्षकार से संविदा कर लिया है तो अवयस्क के विरुद्ध विबंधन का नियम लागू नहीं होगा। दूसरे शब्दों में अवयस्क यह कहने लिये पूर्णतः स्वतन्त्र होगा कि वह अवयस्क है। जगरनाथ सिंह बनाम ललता प्रसाद[5] के वाद में न्यायालय का कथन था कि जो वस्तु अवैध है उसे वैध करने के लिये विबंधन के नियम की सहायता नहीं ली जा सकती। तथा अवयस्क को अपनी रक्षा के लिये अवयस्कता का तर्क लेने का पूरा अधिकार है। संविदात्मक विधि का उद्देश्य यह है कि अवयस्कों के ऊपर संविदात्मक दायित्व न डाले जायें और विबंधन के सिद्धांत के द्वारा इस उद्देश्य को विफल नहीं किया जा सकता।

अयोध्या प्रसाद बनाम चंदन लाल[6] के वाद में दो अवयस्कों ने कुछ ऋण लेकर अपनी संपत्ति को बंधक के रूप में रखा। ये अवयस्क 18 वर्ष की उम्र से अधिक थे। किन्तु 21 वर्ष

की उम्र से कम थे और इन्होंने इस तथ्य को छिपाया कि उनके लिये संरक्षक नियुक्त नहीं किया गया है। न्यायालय के सामने प्रश्न था कि क्या कर्जदाता कर्ज वापिस वसूल कर सकता है। न्यायालय ने निर्णय दिया कि अवयस्क उत्तरदायी नहीं है।

## 2. प्रत्यास्थापन का सिद्धांत :

यदि कोई अवयस्क मिथ्या वर्णन द्वारा किसी संपति को प्राप्त करता है तो वह उस संपति को वापिस करने के लिये विवश किया जा सकता है। परन्तु वह उसी समय तक विवश किया जा सकता है जब तक कि वह संपति अपने मूल रुप में अवयस्क के कब्जे में हो। इसी को साम्य के प्रत्यास्थापन का सिद्धान्त कहते हैं। यदि अवयस्क ने वस्तु को बेच दिया है अर्थात् वस्तु को रुपयों में परिवर्तित कर लिया है तो वह धन चुकाने के लिये विवश नहीं किया जा सकता क्यों कि इस प्रकार से विवश करने का तात्पर्य यह शून्य संविदा को प्रवर्तनीय करना होगा। इसके अतिरिक्त यदि अवयस्क ने मिथ्या वर्णन कर के किसी व्यक्ति से धन प्राप्त कर लिया है तो वह धन प्रत्यास्थापन के सिद्धान्त के द्वारा वापिस नहीं किया जा सकता। इस संबंध में लैसली लि. बनाम शील[7] का वाद महत्वपूर्ण वाद है। इस वाद में एक अवयस्क ने अपनी उम्र के विषय में मिथ्या वर्णन कर के कर्जदाता को धोखा दे कर धन प्राप्त कर लिया। कर्जदाता ने जब उस धन को वसूल करने के लिये वाद प्रस्तुत किया तो न्यायालय ने उसके वाद को खारिज करते हुए कहा कि शून्य संविदा को प्रवर्तनीय नहीं किया जा सकता और न हीं अर्द्ध संविदा के आधार पर धन को वसूल किया जा सकता है क्यों कि जिस तथ्य को स्पष्ट रुप से प्रवर्तनीय नहीं किया जा सकता वह विविक्षित रुप से भी प्रवर्तनीय नहीं हो सकता। अंत में कर्जदाता ने प्रत्यास्थापन के सिद्धान्त का सहारा लेते हुए न्यायालय से प्रार्थना की कि वह उनके धन को वापिस करवाये। न्यायालय ने निर्णय देते हुए कहा कि धन को प्रत्यास्थापना के सिद्धान्त के अन्तर्गत वापिस नहीं करवाया जा सकता क्योंकि धन को यथावत अवयस्क के कब्जे से नहीं लिया जा सकता। जैसा कि किसी वस्तु को उसके मूल रुप में प्राप्त किया जा सकता है।

यदि अवयस्क किसी संविदा को रद्द करवाने के लिये न्यायालय से प्रार्थना करता है तो न्यायालय अवयस्क को उपचार प्रदान कर सकता है। यदि अवयस्क संविदा के अन्तर्गत लिये गये लाभों का प्रत्यास्थापना करने को अथवा उचित क्षतिमूल्य देने को तैयार है।

भारत में विशिष्ट अनुतोष अधिनियम 1877 की धारा 41 में प्रत्यास्थापना के सिद्धान्त का उल्लेख किया गया है। इस धारा के अन्तर्गत न्यायालय को यह अधिकार प्रदान किया गया है कि जिस पक्षकार की प्रार्थना पर संविदा को रद्द किया गया हैं उस पक्षकार के द्वारा उचित क्षति मूल्य दिलवाने की आज्ञा प्रदान कर सकता है। इस संबंध में मोहिरी बीबी बनाम धर्मदास घोष[8] का वाद विशेष रुप से महत्वपूर्ण है। इस वाद में वादी जो कि अवयस्क था ने प्रतिवादी कर्जदाता को 20 हजार रुपये के ऋण के एवज में अपना मकान बंधक रख दिया। कर्जदाता ने 8 हजार रुपये अग्रिम राशि के रुप में वादी को दे दिये। इसी समय कर्जदाता के वकील को यह सूचना प्राप्त हुई कि वादी जो कि बंधक का संविदा कर रहा है अभी अवयस्क है परन्तु फिर भी संविदा किया गया। इसके पश्चात अवयस्क ने उक्त बंधक की संविदा अपनी अवयस्कता के आधार पर रद्द करवाने के लिये न्यायालय से प्रार्थना की। उक्त अधिनियम की धारा 39 के अन्तर्गत अवयस्क अनुतोष प्राप्त करने का अधिकारी था। कर्जदाता का यह तर्क था कि अवयस्क को अनुतोष तब ही दिया जाये जब कि वह ली गयी अग्रिम राशि को वापिस कर दे। कर्जदाता ने पहले संविदा अधिनियम की धारा 64 का सहारा लिया। इस धारा के अन्तर्गत शून्य करणीय संविदा के अन्तर्गत यदि कोई व्यक्ति लाभ कर लेता है तो संविदा के शून्य घोषित होने पर वे लाभ उसको वापिस करने होंगे। प्रिवी काउंसिल ने धारित किया कि धारा 64 इस वाद में लागू नहीं हो सकती क्योंकि अवयस्क का संविदा शून्य करणीय नहीं अपितु पूर्णतः शून्य होता है। इसी प्रकार से धारा 65 के अन्तर्गत भी कर्जदाता को कोई अनुतोष नहीं दिया गया। क्यों कि यह संविदा प्रारम्भ से ही पूर्णतः शून्य था। अंत में कर्जदाता ने विशिष्ट अनुपालना अधिनियम की धारा 41 का सहारा लिया। इस धारा के अन्तर्गत न्यायालय को विवेकी अधिकार प्राप्त है। जिनका प्रयोग करते हुए न्यायालय क्षतिग्रस्त पक्षकार के लिये अनुतोष प्रदान कर सकता है। परन्तु न्यायालय ने निर्णय दिया कि क्षतिग्रस्त पक्षकार इस धारा के अन्तर्गत भी अनुतोष प्राप्त करने का अधिकारी नहीं है क्योंकि कर्जदाता को पहले से ही ज्ञान था कि वादी अवयस्क है। इसलिए जो व्यक्ति स्वयं साम्य नहीं करता वह साम्य प्राप्त करने का अधिकारी भी नहीं है। अतः न्यायालय ने प्रत्यास्थापन का सिद्धान्त इस वाद में लागू नहीं किया।

इस विषय में खान गुल बनाम लखा सिंह[9] का वाद विशेष रुप से महत्वपूर्ण है। इस

वाद में प्रतिवादी जो कि एक अवयस्क था ने अपनी आयु के विषय में मिथ्यावर्णन करा के अपनी भूमि को बेचने का संविदा किया और 17500/- अग्रिम राशि के रुप में दूसरे पक्षकार से प्राप्त भी कर लिये। इसके पश्चात् भूमि का कब्जा देने से इंकार कर दिया। वादी ने दी हुई अग्रिम राशि को वसूल करने अथवा संविदा का विशिष्ट अनुपालना करने का न्यायालय से प्रार्थना की। संविदा के विशिष्ट अनुपालन का तो प्रश्न ही नहीं उठता क्योंकि संविदा पूर्णतः शून्य था अतः न्यायालय के सामने प्रश्न था कि क्या न्यायालय विशिष्ट अनुतोष अधिनियम की धारा 41 के अन्तर्गत अग्रिम राशि को वापिस दिलवा सकता है। न्यायाधीश शादीलाल ने क्रान्तिकारी निर्णय देते हुए घोषित किया कि संपति तथा धन के प्रत्यास्थापन में वास्तव में कोई वास्तविक अन्तर नहीं है संपति को मूल रुप में पहचाना जा सकता है जबकि धन को नहीं पहचाना जा सकता। भारत में अवयस्क द्वारा किये गये संविदा पूर्णतः शून्य होते हैं जबकि इग्लैण्ड में इस प्रकार का सामान्य नियम नहीं है। अतः भारत में प्रत्यास्थापन के सिद्वान्त को लागू करने का क्षैत्र इंग्लैण्ड की अपेक्षा अधिक विस्तृत होना चाहिये। अतः विशेष अनुतोष अधिनियम की धारा 39 और 41 अवयस्क के विरुद्ध भी लागु की जा सकती है। साम्य सिद्धान्त का उदेश्य यह है कि एक अवयस्क अपने कपट का लाभ प्राप्त नहीं कर सकता। अतः न्यायाधीश ने आज्ञा प्रदान की कि अवयस्क द्वारा 17500/- वापिस किये जाने चाहिये। परन्तु न्यायाधीश शादीलाल का यह निर्णय भविष्य में अनुकरणीय नहीं रहा। अयोध्याप्रसाद बनाम चंदनलाल[10] के बाद में इलाहाबाद उच्च न्यायालय ने इसके विपरित निर्णय दिया। इस वाद में दो अवयस्कों ने अपनी उम्र का मिथ्यावर्णन कर के कर्जदाता से कर्ज लिया। प्रश्न था कि क्या कर्जदाता कर्ज को वसूल करने अथवा बंधक की हुई संपति को बेचने की डिक्री प्राप्त कर सकते हैं। न्यायाधीश सुलेमान ने निर्णय देते हुए कहा कि भारतीय न्यायालयों को प्रत्यास्थापन के सिद्धान्त को अधिक विस्तृत नहीं करना चाहिये तथा भारतीय न्यायालय को लैसली बनाम शील[11] के निर्णय का अनुकरण करना चाहिये। अतः न्यायाधीश ने कहा कि यदि संपति को मूल रुप में नहीं पहचाना जा सकता और यदि क्षतिपूर्ति करने का एक मात्र साधन धन की डिक्री देना हो तो अवयस्क के विरुद्ध धन की डिक्री इसलिए नहीं दी जा सकती कि धन की डिक्री देने का तात्पर्य होगा शून्य संविदा को प्रवर्तनीय घोषित करना।

गोकेडा लच्छाराव बनाम विश्वनाथम भीमैय्या[21] के वाद में आन्ध्रप्रदेश उच्च न्यायालय ने अयोध्याप्रसाद के निर्णय का अनुकरण करते हुए धारित किया कि अवयस्क के पास यदि वस्तु यथावत उपलब्ध है तो वह प्रत्यास्थापन के सिद्धन्त के द्वारा वापिस प्राप्त की जा सकती है परन्तु उस वस्तु के बदले वस्तु का मूल्य अथवा क्षति मूल्य प्राप्त नहीं किया जा सकता।

भारतीय विधि आयोग ने न्यायाधीश शादी लाल के विचारों के अनुसार विधि में संशोधन करने की सिफारिश की है। विशिष्ट अनुतोष अधिनियम 1963 में सिफारिश के अनुसार संशोधन भी किया गया है।

### 3. अवयस्क के विरुद्ध अनुसमर्थन का सिद्धान्त लागु नहीं होता:-

एक व्यक्ति द्वारा अपनी अवयस्कता में किये गये संविदाओं का, वयस्कता प्राप्त करने पर अनुसमर्थन नहीं किया जा सकता। अनुसमर्थन का तात्पर्य है कि भूतकाल में किये गये कार्यों का वर्तमान में अनुसमर्थन अथवा उत्तरदायित्व प्राप्त करना। अतः अवयस्कता में किये गये शून्य करारों को वयस्क होने के पश्चात् वैध नहीं किया जा सकता। भोलाराम बनाम भगतराम[13] के वाद में लाहौर उच्च न्यायालय ने स्पष्ट किया कि शून्य संविदाओं का अनुसमर्थन करना स्वयं वैधिक अन्तर्विरोध है। यदि आवश्यक ही है तो वयस्कता प्राप्त करने पर एक नया संविदा किया जाना चाहिये। और नये संविदा में नया प्रतिफल भी होना चाहिये। अवयस्कता की आयु में किये गये संविदा के अन्तर्गत प्राप्त किये गये प्रतिफल वयस्कता की आयु में किये गये संविदाओं के लिये वैध प्रतिफल नहीं माने जायेंगे। यह सिद्धान्त इलाहाबाद उच्च न्यायालय की पूर्णपीठ ने सूरजनारायण बनाम सुखू अहीर[14] केदा में प्रतिपादित किया इस वाद में प्रतिवादी (अवयस्क) ने एक प्रोनोट लिखकर कुछ धन वादी से उधार लिया। जब वादी वयस्क हो गया तो उसने एक नया प्रोनोट उसी धन के लिये पुनः वादी के पक्ष में लिख दिया। इस प्रोनोट में वादी ने वचन दिया था कि वह पहले लिये हुए ऋण के लिये उत्तरदायी है। न्यायालय ने बहुमत से निर्णय दिया कि दूसरे प्रोनोट के आधार पर वाद दायर नहीं किया जा सकता क्योंकि वह दूसरा प्रोनोट बिना प्रतिफल के था और बिना प्रतिफल का संविदा धारा 25 के अन्तर्गत शून्य होता है।

कुछ न्यायालयों द्वारा ऐसे भी निर्णय दिये गये हैं जिनमें अवयस्क वयस्क होने पर यदि नया प्रतिफल देता है तो इस प्रकार के पुराने संविदा का अनुसमर्थन किया जा सकता है। उदाहरण के लिये कुन्दन बीबी बनाम श्री नारायण[15] के वाद में एक अवयस्क ने वादी से सात हजार रुपये का सामान उधार लिया। जब अवयस्क वयस्क हुआ तो उसने एक प्रोनोट ऋण दाता के पक्ष में लिख दिया। ऋण दाता ने यह भी वचन दिया कि वह इस धन को वसूल करने के लिऐ एक वर्ष तक न्यायालय में नहीं जायेगा। न्यायालय ने निर्णय दिया कि उक्त अनुबन्ध से एक नया प्रतिफल अर्थात् ऋणदाता ने एक वर्ष तक न्यायालय में वाद नहीं लाने का वचन दिया था अतः उसके बदले में प्रतिवादी ने एक वर्ष के अन्तर्गत ऋण चुकाने का वचन दिया था अतः प्रोनोट वैध है तथा प्रतिवादी ऋण चुकाने को उत्तरदायी है। इसी प्रकार नारायणसिंह बनाम चिरंजीलाल[16] के बाद में एक अवयस्क ने कुछ धन वादी से उधार लिया। वयस्क होने पर उसने वादी को दूसरा प्रोनोट लिख कर दे दिया : यह प्रोनोट पुराने प्रोनोट के स्थान पर था। न्यायालय ने निर्णय देते हुए कहा कि चूँकि इसमें भूतकालीन प्रतिफल था तथा भूतकालीन प्रतिफल संविदा अधिनियम की धारा 2 (D) के अन्तर्गत वैध प्रतिफल है अतः वयस्क द्वारा लिखा गया प्रोनोट वैध है।

उपरोक्त दोनों वादों में दिये गये निर्णयों की पोलक एवं मुल्ला ने कटु आलोचना की है। उनकी दृष्टि में उक्त दोनों निर्णय पूर्णतः गलत हैं। और लेखक भी पोलक एवं मुल्ला के विचारों से सहमत है।

## 4. संविदा से उत्पन्न अपकृत्यों के प्रति अवयस्क का दायित्व

जॉनसन बनाम पई[17] के वाद में इंग्लैन्ड में 1665 में ही यह नियम स्थापित हो चुका है कि यदि किसी अवयस्क ने मिथ्यावर्णन कर के किसी ऋण दाता से धोखे से ऋण प्राप्त कर लिया है तो वह धन धोखे (Deceit) के लिये क्षतिपूर्ति के रुप में वापिस प्राप्त नहीं किया जा सकता। न्यायालय ने स्पष्ट किया कि यदि इस प्रकार अपकृत्यों के द्वारा संविदाओं के प्रति अवयस्कों को उत्तरदायी ठहराया जायेगा तो इंग्लेण्ड के सारे अवयस्क बरबाद हो जायेंगे। इस लिए जहां अवयस्क को सीधे रुप से उत्तरदायी नहीं ठहराया जा सकता वहां अवयस्क को

विविक्छित रुप से भी उत्तरदायी नहीं ठहराया जा सकता। क्योंकि अवयस्क को उत्तरदायी ठहराने के लिये संविदा को अपकृत्यों में परिवर्तित नहीं किया जा सकता। यही सिद्धांत भारत में भी लागू किया जा रहा है। उदाहरण के लिए हरिमोहन बनाम दुल्लू मियाँ [18] के वाद में कलकत्ता उच्च न्यायालय ने एक अवयस्क द्वारा कपट द्वारा लिये गये धन के प्रति अवयस्क को उत्तरदायी नहीं घोषित किया।

लेकिन जहां अपकृत्य एवं संविदा दोनों एक दूसरे से पृथक हैं। वहां अवयस्क को अपकृत्य के लिये उत्तरदायी ठहराया जा सकता है। उदाहरण के लिये बर्नार्ड बनाम हैगिस [19] के वाद में प्रतिवादी (अवयस्क) ने वादी से सवारी करने के लिए एक घोड़ा उधार लिया। संविदा में यह भी स्पष्ट था कि घोड़े को भगाया अथवा कुदाया नहीं जायेगा। प्रतिवादी ने घोड़े को अपने मित्र को दे दिया जिसने घोड़े को कुदाया घोड़ा गिर गया एवं घोड़े को चोट पहुंची। न्यायालय ने निर्णय दिया कि अवयस्क अपकृत्य के लिये उत्तरदायी है। क्योंकि यह अपकृत्य संविदा से पूर्णत: पृथक था।

## 5 अवयस्क एक लाभकारी के रुप में :

मोहिरी बीबी बनाम धर्मदास घोष [20] के वाद में प्रिवीकांउंसिल ने 1903 में ही यह घोषित कर दिया था कि अवयस्क द्वारा किये गये सविदा पूर्णत: शून्य होते हैं। परन्तु यह सिद्धान्त उन परिस्थितियों में लागू किया जाता रहा है जिनमें अवयस्क के ऊपर किन्हीं दायित्वों को डाला गया है। परन्तु यदि अवयस्क ने प्रतिफल दे दिया है अथवा सविदा को प्रवर्तनीय करना अवयस्क के हित में होता तो न्यायालय ऐसे संविदाओं को प्रवतनीय करवायेगा। चूकि विधि की यह नीति है कि ऐसे संविदाओं में जो अवयस्क के हित के लिये किये गये हैं अथवा जिनमें अवयस्क ने प्रतिफल दे दिया है प्रवर्तनीय करवाया जाये। रागवाचारियर बनाम श्री निवास [21] के वाद में कहा गया था कि जब कोइ अवयस्क किसी संपति को बंधक रखकर उसके बदले में बंधक राशि चुका देता है तो ऐसे संविदा को उसके द्वारा अथवा उसके लिये किसी अन्य व्यक्ति द्वारा प्रवर्तनीय करवाया जा सकेगा। इसी प्रकार कलेक्टर आफ० मेरठ

बनाम हर दयाल[22] के वाद में न्यायालय ने निर्णय दिया कि यदि एक अवयस्क ने किसी अचल संपति को खरीद लिया है तो वह न्यायालय द्वारा उस संपति को प्राप्त करने का अधिकार रखता है।

यहाँ यह ध्यान रखना होगा कि यदि संविदा निष्पाद्य प्रकृति का है अर्थात् अवयस्क ने अभी प्रतिफल नहीं दिया है तो उपरोक्त सिद्धान्त लागु नहीं किया जायेगा। उदाहरण के लिये राजसानी बनाम प्रेम अबीब[23] के वाद में वादी (अवयस्क) को प्रतिवादी जो कि एक फिल्म निर्माता था ने अपनी एक फिल्म में नायिका का रोल दिया। यह संविदा फिल्म निर्माता तथा वादी के पिता के मध्य हुआ था। फिल्म निर्माता ने कुछ समय पश्चात् राजरानी का रोल किसी अन्य नायिका को दे दिया। वादी द्वारा संविदा भंग का वाद प्रस्तुत करने पर न्यायालय ने निर्णय दिया कि न तो वादी और न ही उसके पिता वाद लाने के अधिकारी हैं। क्योंकि वादी अवयस्क होने के कारण संविदा करने को सक्षम पक्षकार नहीं है और यदि संविदा को पिता के साथ माने तो पिता द्वारा संविदा में कोई प्रतिफल नहीं दिया गया था अतः वह प्रतिफल रहित होने के कारण शून्य है।

## शादी का संविदा :

अवयस्क की शादी के संविदा प्रथम दृष्टि में अवयस्क के लाभ के लिए होता है अतः इस प्रकार के संविदा भी अवयस्क के लाभ के लिये प्रवर्तनीय होंगे। रोज फर्नान्डीस बनाम जोसिफ औनस्लेक्स[24] के वाद में जब वादी अवयस्क थी तो उसके पिता ने उसकी शादी प्रतिवादी से तय कर दी। बाद में प्रतिवादी ने शादी करने से इंकार कर दिया तथा वादी ने प्रतिवादी के विरुद्ध न्यायालय में वाद प्रस्तुत किया। न्यायालय ने निर्णय देते हुए कहा कि चूँकि यह संविदा लड़की के लाभ के लिये थी अतः लड़की द्वारा वाद लाया जा सकता है।

## अवयस्क द्वारा संविदा का विशिष्ट अनुपालन :

संविदा के विशिष्ट अनुपालन का तात्पर्य है संविदा के शब्दों का विशेष रुप से ज्यों का त्यों अनुपालन करवाना। उदाहरण के लिये यदि 'अ' 'ब' से भूमि खरीदने का संविदा करता है तो 'अ' को 'ब' से भूमि ही प्राप्त होनी चाहिये। यदि न्यायालय भूमि न दिलाकर

भूमि के बराबर मूल्य दिलाता है तो यह सविद. का विशिष्ट अनुपालन नहीं माना जायेगा। इसके अतिरिक्त विशिष्ट अनुपालन के लिये यह भी आवश्यक है कि संविदा के दोनों पक्षकारों में पारस्परिकता (Mutuality) हो। चूँकि अवयस्क द्वारा किया गया संविदा प्रारम्भ से ही शून्य करार होता है। अतः इसमें पारस्पकिता का पूर्णतः अभाव होता है इसलिये विशिष्ट अनुपालन का प्रश्न ही उत्पन्न नही होता।

यदि सविदा अवयस्क के लाभ के लिये किया गया है तो अवयस्क न्यायालय द्वारा उस संविदा को प्रवर्तनीय तो करवा सकता है परन्तु विशिष्ट अनुपालन नहीं करवाया जा सकता। विशिष्ट अनुपालन एक साम्यिक उपचार है। और विशिष्ट अनुपालन साम्य के आधार पर तब ही संभव हो सकता है जब संविदा के दोनों पक्षों को उपचार प्राप्त करने का बराबर अधिकार प्राप्त हो। मीर सरवर्जन बनाम फखरुद्दीन[25] के वाद में प्रिवोकाउंसिल ने यह निर्णय दिया कि एक अवयस्क के संरक्षक को यह अधिकार नहीं है कि वह किसी अवयस्क के स्थान पर अचल संपति के क्रय का संविदा करने के लिये सक्षम हो। परन्तु बाबुराम बनाम सैदुलानिशा[26] के वाद में इलाहाबाद उच्च न्यायालय ने यह धारित किया कि यदि संरक्षक की नियुक्ति संविदा अधिनियम द्वारा हुई है तो इस प्रकार का संविदा मान्य होगा और यदि संरक्षक की नियुक्ति गार्जियन एण्ड वार्डस एक्ट के अन्तर्गत हुई है तो उक्त संविदा का पालन नहीं करवाया जा सकता।

## 7 आवश्यक वस्तुओं के लिये अवयस्क का दायित्व :

संविदा अधिनियम की धारा 68 के अनुसार यदि कोई व्यक्ति संविदा करने में असमर्थ है ऐसे व्यक्ति को उसके सामाजिक स्तर के अनुसार कोई अन्य व्यक्ति आवश्यक मस्तुएं प्रदान करता है तो ऐसा प्रदान करने वाला व्यक्ति उस असमर्थ व्यक्ति की संपति से भरपाई कर सकेगा। उक्त धारा की तीन शर्तें हैं।

1. व्यति संविदा करने में अक्षम होना चाहिये।
2. अक्षम पक्षकार को आवश्क वस्तुएं प्रदान की जानी चाहिये।
3. प्रदान करने वाला व्यक्ति असमर्थ व्यक्ति की संपति से भरपाई कर सकेगा।

उदाहरण के लिये 'अ' एक अवयस्क 'ब' को आवश्यक वस्तुएं प्रदान करता है। अ' 'ब' की संपति से भरपाई करने का अधिकारी है।

'अ' 'ब' जोकि पागल है की पत्नी तथा बच्चों को आवश्यक वस्तुएं प्रदान करता है। अ' 'ब' की संपति से प्रदान की गयी वस्तुओं का मूल्य प्राप्त करने का अधिकारी है।

"आवश्यक वस्तुओं" से तात्पर्य उन वस्तुओं से है जो अच्छे जीवन के लिये आवश्यक है। अतः एक अवयस्क द्वारा आवश्यक वस्तुओं के लिये किया गया संविदा भारतीय संविदा अधिनियम की धारा 68 के अन्तर्गत वैध होगा। आवश्यक वस्तुओं के अन्तर्गत खाने की वस्तुएं, पहिनने के वस्त्र, रहने के लिये मकान, मानसिक विकास के साधन शिक्षा, शारीरिक रक्षा के साधन, धार्मिक एवं नैतिक शिक्षा के साधन, दवाइयों का खर्चा, माता पिता के मृत्यु पर किया गया खर्चा, सफल वाद के विजय के लिये दिया गया धन, बेटी अथवा बहिन की शादी के लिये किया गया खर्चा आदि आवश्यकता की परिभाषा में आते हैं। अवयस्क की स्वयं की शादी पर किया गया खर्चा आवश्यकता की परिभाषा के अन्तर्गत नहीं आता। नैश बनाम इनमैन[27] के वाद में एक विद्यार्थी जो कैंब्रिज विश्व विद्यालय में पड़ता था, को एक दर्जी ने पहिनने के कुछ सूट बनाकर दिये। किन्तु इस प्रकार के कपड़े उसके पास पहले से ही पर्याप्त मात्रा में थे। दर्जी ने जब उन कपड़ों का मूल्य प्राप्त करने के लिये न्यायालय में वाद प्रस्तुत किया तो न्यायालय ने धारित किया की चूँकि अवयस्क के पास उस प्रकार के वस्त्र पहले से ही मौजूद ये अतः दर्जी द्वारा दिये गये वस्त्र आवश्यकताओं की परिभाषा में नहीं आते अतः अवयस्क उत्तरदायी नहीं है।

## 8. अवयस्क एक अभिकर्ता के रुप में ;-

किसी भी अवयस्क को अभिकर्ता नियुक्त करने का अधिकार नहीं है। परन्तु अवयस्क को अभिकर्ता नियुक्त किया जा सकता है। व्यपारिक संव्यवहार में अन्य पक्षकारों के साथ वह अपने नियोक्ता का प्रतिनिधित्व करता है और नियोक्ता अपने अभिकर्ता के कार्यों के लिये उत्तरदायी होता है। परन्तु नियोक्ता किसी भी वैध कार्य के लिये अवयस्क अभिकर्ता को व्यक्तिगत रुप से उत्तरदायी नहीं ठहराया सकता। न ही अवयस्क अभिकर्ता द्वारा हुई हानियों के लिये नियोक्ता अभिकर्ता से क्षति पूर्ति प्राप्त कर सकता है।

## 9. अवयस्क एक साझेदार के रुप में।

एक अवयस्क साझेदार नहीं बन सकता। क्योंकि साझेदारी एक संविदा है और अवयस्क

संविदा करने के लिए सक्षम पक्षकार नहीं है। परन्तु साझेदारी अधिनियम की धारा 30 के अन्तर्गत साझेदारी के लाभों से अंश प्राप्त करने के लिये अन्य सभी साझेदारों की सहमति से अवयस्क को साझेदारी में सम्मिलित किया जा सकता है। अवयस्क को फर्म के प्रबन्ध कार्य में भाग लेने या फर्म के खातों का अवलोकन करने का अधिकार प्राप्त नही होता।

## विकृत मस्तिष्क वाले व्यक्ति :

भारतीय संविदा अधिनियम की धारा 12 के अन्तर्गत संविदा करने के लिए प्रत्येक ऐसे व्यक्ति को अच्छे मस्तिष्क वाला कहा जा सकता है जो संविदा करते समय संविदा में अपने हितों पर होने वाले प्रभाव के विषय में विवेकपूर्ण निर्णय करने की क्षमता रखता हो। चूँकि एक मूर्ख, पागल एवं शराबी, विकृत मस्तिष्क होने के कारण अनुबन्ध करने की क्षमता नहीं रखते हैं इसलिये उनके द्वारा किये गये समझौते प्रारंभ से ही शून्य होते हैं।

निर्बुद्ध व्यक्ति के साथ आवश्यक वस्तुओं के अतिरिक्त किया गया किमी भी प्रकार का संविदा पूर्णतः शून्य होता है। पागल तथा शराबी व्यक्ति के साथ किये गये संविदा उन अन्तरालों में तो वैध माने जायेगे जिन अन्तरालों में वह विवेकपूर्ण निर्णय लेने में सक्षम थे। शेष ऐसे समय में जब वह संविदा की प्रकृति एवं उनके हितों पर पड़ने वाले विषय में विवेकपूर्ण निर्णय करने की क्षमता नहीं रखते, पूर्णतः शून्य होंगे। पागल व्यक्ति द्वारा आवश्यक वस्तुओं के लिये किये गये संविमा भी वैध होंगे।

## विवाहित स्त्री द्वारा किये गये संविदा :

स्त्रियों एव पुरुषों की संविदा की क्षमता में कोई भेद नहीं है। भारत में स्त्रियां चाहे विवाहित हो अथवा नहीं पुरुषों के समान ही संविदा करने को सक्षम हैं। स्वयं द्वारा प्राप्त संपति पर उसका पूर्ण स्वामित्व होता है। उस संपति पर वह किसी भी प्रकार का संविदा कर सकती है। उन संविदाओं के लिये उसका पति उत्तरदायी नहीं होगा। यदि पति द्वारा जीवन यापन की उचित व्यवस्था नहीं की है तो "आवश्यक वस्तुओं के लिये वह पति की साख को गिरवी रख सकती है।